

पाठ्यक्रम: परिभाषा, आवश्यकता, उद्देश्य एवं महत्व (भाग - 1) - बाल विकास एवं अध्ययन विद्यापाठ्यक्रम की परिभाषा

“पाठ्यक्रम में वे सब क्रियाएं सम्मिलित हैं जिनका हम शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विद्यालय में उपयोग करते हैं।” - मुनरो

“कलाकार (शिक्षक) के हाथ में यह (पाठ्यक्रम) एक साधन है, जिससे वह पदार्थ (विद्यार्थी) को आदर्श उद्देश्य के अनुसार अपने स्टूडियो (स्कूल) में ढाल सके।” - कनिंघम

“पाठ्यक्रम को मानव जाति के सम्पूर्ण ज्ञान तथा अनुभवों का सार समझना चाहिए।” - फ्रोबेल

“पाठ्यक्रम में विद्यार्थी के वे सभी अनुभव सम्मिलित हैं, जिन्हें वह स्कूल के अन्दर या बाहर प्राप्त करता है और जिन्हे उसके मानसिक, शारीरिक, भावनात्मक, सामाजिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक विकास के लिए बनाये गये कार्यक्रम में सम्मिलित किया जाता है।” - क्रो तथा क्रो

“सीखने का विषय या पाठ्यक्रम पदार्थों विचारों और सिद्धांतों का चित्रण है जो कि उद्देश्यपूर्ण लगातार क्रियान्वेषण से साधन या बाधा के रूप में आ जाते है।” - डिवी

“पाठ्यक्रम वह है जो छात्र के जीवन के प्रत्येक बिन्दु को स्पष्ट करता है।” - मुदालियर आयोग

पाठ्यक्रम की आवश्यकता एवं उपयोगिता

पाठ्यक्रम की आवश्यकता एवं उपयोगिता कई दृष्टिकोण से है। मुख्य दृष्टि कोण निम्नलिखित हैं-

समय एवं शक्ति की बचत : पाठ्यक्रम के कारण समय एवं शक्ति दोनों की बचत होती है। शिक्षक, विद्यार्थी तथा शिक्षाशास्त्री सभी का समय बच जाता है, निश्चिंतता होने के कारण उन्हें इधर-उधर नहीं भटकना पड़ता है।

शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति : पाठ्यक्रम शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति कराता है। शिक्षा का जैसा पाठ्यक्रम रहता है, शिक्षा के उद्देश्य वैसे ही होते हैं, बिना पाठ्यक्रम के शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो सकती है।

विभिन्न स्थानों पर कार्य करने वाले शिक्षकों के कार्यों में एकरूपता: पाठ्यक्रम की ही बदौलत विभिन्न क्षेत्रों के शिक्षक का कार्य समरूपता एवं एकरूपता लिये होता है। इससे शिक्षा का एक स्तर बनता है। विद्यालयों के कार्यों में विभिन्नता नहीं आ पाती और भ्रम नहीं उत्पन्न होता।

ज्ञान की प्राप्ति : पाठ्यक्रम छात्रों को आवश्यक ज्ञान प्रदान करता है। छात्रों को यह भी मालूम रहता है कि अमुक स्तर पर उनका ज्ञान अमुक स्तर तक होना चाहिए। पाठ्यक्रम ज्ञान-विज्ञान का साधन है।

नागरिकता का विकास : पाठ्यक्रम द्वारा छात्रों को सुयोग्य एवं कुशल नागरिक बनाया जाता है। उनमें नागरिक गुणों की वृद्धि की जाती है। पाठ्यक्रम में ऐसे विषय रखे जाते हैं, जिनसे नागरिक गुणों की वृद्धि होती है।

चरित्र का विकास : प्रगतिशील शिक्षक प्रणालियाँ चरित्र के विकास पर बल देती हैं। इसका साधन पाठ्यक्रम है। पाठ्यक्रम के द्वारा चरित्र विकसित किया जाता है।

व्यक्तित्व का विकास : पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय इस बात पर बल देना चाहिए कि छात्रों का उससे विकास हो। छात्रों के हर क्षेत्र का विकास होना चाहिए। उनके शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों का विकास पाठ्यक्रम के माध्यम से किया जाता है।

खोज एवं आविष्कार : पाठ्यक्रम छात्रों में ज्ञान भरता है। ये छात्र उच्च श्रेणियों में जाकर खोज एवं आविष्कार की ओर उन्मुख होते हैं। कुछ छात्र इसमें सफलता प्राप्त भी कर लेते हैं।

पाठ्यक्रम के उद्देश्य

पाठ्यक्रम के निर्माण में निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं-

क्या और कैसे का ज्ञान-किसी स्थान के रहने वालों को किस प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए यह पाठ्यक्रम से ज्ञात होता है।

आदर्श नागरिकों का निर्माण-पाठ्यक्रम रंग-भेद, जाति-भेद आदि के भेद-भाव की भावना से रहित हो।

बालक के व्यक्तित्व एवं चिंतन का विकास-पाठ्यक्रम चिंतनशील मानव आधार प्रस्तुत कर बुद्धि का विकास करता है और इस बात का भी ध्यान रखा जाए कि प्राकृतिक गुणों तथा शक्तियों का विकास कर सके।

बालकों की रुचियों पर आधारित- पाठ्यक्रम का निर्माण एक ही ज्ञान का उपार्जक है। वह बालक की रुचियों का ध्यान रखकर तैयार किया जाए।

पाठ्यक्रम में इस बात का समावेश होना चाहिए कि मनुष्य क्या जानता है? उसमें साहित्य, विज्ञान, गणित, भूगोल, आदि परंपरागत विषय संक्षेप में होने चाहिए।

राँस के अनुसार, “अन्तिम रूप में, विद्यालय को मनुष्य की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति (कला, कविता एवं संगीत) प्रदान करनी चाहिए।”

अर्थात् “विद्यालयों में उन विषयों अथवा क्रियाओं का प्रबंध होना चाहिए, जिनके द्वारा मनुष्य की भावनाओं की तुष्टि कला, गायन तथा कविता के माध्यम से हो सके।”

चारित्रिक उत्थान-सत्य, सेवा, त्याग, परोपकार, सहयोग, प्रेम आदि मनुष्य के नैसर्गिक गुणों को विकसित करके उन्हीं के अनुसार आचरण कराना पाठ्यक्रम का लक्ष्य होता है।

पाठ्यक्रम तैयार करने के निम्न सिद्धांत भी ध्यान में रखे जाने चाहिए-

उपयोगिता का सिद्धांत: नन महोदय के मतानुसार पाठ्यक्रम रचना के सिद्धांतों में इस सिद्धांत का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। यह भी सत्य है कि जिस पाठ्यक्रम से बालक को या समाज को कोई लाभ नहीं होता, वह व्यर्थ एवं बकवास है। पाठ्यक्रम को चाहिए कि वह बालकों को आत्मनिर्भर एवं समाज को प्रगतिशील बनाये।

जीवन से सम्बन्धित होना : पाठ्यक्रम को जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए। पाठ्यक्रम में मानव जीवन का अध्ययन होना चाहिए। पाठ्यक्रम अनुभव प्रधान होना चाहिए। उसे सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए।

रचनात्मक प्रवृत्ति का सिद्धांत : बालकों की प्रवृत्ति रचनात्मक होती है। रचनात्मक विषयों को पढ़ने में बालक ज्यादा दिलचस्पी लेते हैं। इसमें बालक स्वयं करके सीखते हैं।

आवश्यकता का सिद्धांत : पाठ्यक्रम बालक की आवश्यकता के अनुसार बनाया जाता है। इसमें उनकी वर्तमान एवं भावी दोनों ही आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाता है। उसे व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों ही प्रकार की आवश्यकताओं का ध्यान रखना चाहिए। नन एवं डिवी ने पाठ्यक्रम के इस सिद्धांत पर बल दिया है।

दार्शनिक आधार का सिद्धांत : पाठ्यक्रम का आधार दार्शनिक हो। उसे विविध दार्शनिक आधार की प्रगतिशील बातों को ग्रहण करके अपनी रचना करनी चाहिए। आदर्शवाद के उद्देश्य प्रयोगवाद के विषय प्रकृतिवाद की शिक्षण पद्धति अगर आकर्षक हैं, तो इनसे लाभ उठाकर पाठ्यक्रम की संरचना करनी चाहिए। प्रत्येक पाठ्यक्रम का एक न एक दार्शनिक आधार होना चाहिए।

सुसम्बद्धता का सिद्धांत : पाठ्यक्रम में सुसम्बद्धता होनी चाहिए। प्राइमरी, मिडिल एवं उच्च कक्षाओं के पाठ्यक्रम के बीच 'गैप' नहीं होना चाहिए। उन्हें सुसम्बद्ध या सहसम्बन्धित होना चाहिए, ऐसा लगे कि वे एक कड़ी में जुड़े हैं।

विद्यार्थी केन्द्रीयता का सिद्धांत : पाठ्यक्रम बालकों की रुचि, प्रवृत्ति, क्षमता, योग्यता एवं आवश्यकता के अनुसार होना चाहिए। बालकों की वैयक्तिक विभिन्नता का उसमें ध्यान रखना चाहिए। बालकों की क्रिया एवं अनुभव के आधार पर ज्ञान प्राप्त करने का अवसर पाठ्यक्रम को देना चाहिए।

समुदाय-केन्द्रीयता का सिद्धांत : पाठ्यक्रम की रचना में बालकों की आवश्यकता के अलावा समुदाय की आवश्यकता का भी ध्यान रखना चाहिए। पाठ्यक्रम सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए। समुदाय की आवश्यकता, समस्या आदि का ध्यान रखते हुए पाठ्यक्रम को समुदाय केन्द्रित बनाना चाहिए। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने लिखा है कि "पाठ्यक्रम सामुदायिक जीवन से सजीव तथा आंगिक रूप से सम्बन्धित होना चाहिए।"

क्रियाशीलता एवं अनुभव का सिद्धांत : पाठ्यक्रम की रचना का प्रमुख सिद्धांत 'करके सीखना' एवं 'अनुभव से सीखना' (Learning by doing and learning by experience) होना चाहिए। यह सिद्धांत मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से ठीक है। इससे बालकों को ठोस एवं स्थायी ज्ञान प्राप्त होता है। पुस्तकीय ज्ञान छात्रों में अरुचि पैदा करता है।

विविधता का सिद्धांत : यह पाठ्यक्रम की रचना का एक प्रमुख सिद्धांत है। विविधता का सिद्धांत पाठ्यक्रम को व्यापक बनाता है। इससे बालकों की विभिन्न योग्यताओं को विकसित किया जाता है। ऐसा पाठ्यक्रम प्रजातांत्रिक होता है और प्रत्येक प्रकार के बालकों का विकास करने में समर्थ होता है। इसमें उनकी व्यक्तिगत विभिन्नता को विकसित करने के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त होता है।

लचीलेपन का सिद्धांत : पाठ्यक्रम लचीला होना चाहिए। प्रत्येक प्रकार के बालकों के लिए अनुकूल होना चाहिए। देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार इसे बदलते रहना चाहिए। इसमें शिक्षा की नवीन प्रवृत्तियों को स्थान मिलना चाहिए। इसमें बालकों एवं समाज की रुचि के अनुसार परिवर्तन को स्थान मिलना चाहिए।

एकता का सिद्धांत : पाठ्यक्रम को एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में होना चाहिए। उसमें छात्रों एवं अध्यापकों की क्रियाओं सम्बन्धी एकता होनी चाहिए। शिक्षण की इकाइयों का विद्यार्थी के जीवन एवं वातावरण के साथ भी सामंजस्य होना चाहिए।

सह-सम्बन्ध का सिद्धांत : पाठ्यक्रम के विषयों का आपस में सह-सम्बन्ध होना चाहिए। विषयों को अलग-अलग करके नहीं पढ़ाना चाहिए। ज्ञान एक समग्र इकाई के रूप में है। इसलिए विषयों के बीच सह-सम्बन्ध का होना आवश्यक है। इस सिद्धांत के कारण ज्ञान स्थायी एवं उपयोगी होता है।

प्रजातांत्रिक मूल्यों के विकास का सिद्धांत : पाठ्यक्रम में प्रजातांत्रिक मूल्यों का स्थान मिलना चाहिए। समय एवं परिस्थिति के अनुसार प्रजातांत्रिक मूल्यों की शिक्षा देने की व्यवस्था पाठ्यक्रम के माध्यम से की जानी चाहिए। प्रजातांत्रिक देशों के पाठ्यक्रम में इस सिद्धांत को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए।

कौतूहल, यथार्थता एवं सामान्यीकरण का सिद्धांत : पाठ्यक्रम में कौतूहल, यथार्थता एवं सामान्यीकरण का सिद्धांत होना चाहिए। व्यक्ति को सीखने के लिए ये तीनों गुण आवश्यक होते हैं। कौतूहल के बाद यथार्थ की स्थिति आती है, और यथार्थ समझ लेने पर ज्ञान का सामान्यीकरण हो जाता है।

विकास का सिद्धांत : पाठ्यक्रम में विकास का सिद्धांत लागू करना चाहिए। पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए, जिसमें बालक, राज्य एवं समाज तीनों का विकास हो। बालकों के मानसिक, शारीरिक, भावात्मक, सामाजिक नैतिक आदि विकासों के लिए पाठ्यक्रम को उत्तरदायी होना चाहिए।

सुरक्षा का सिद्धांत : पाठ्यक्रम में सुरक्षा के लिए भी विषय रखे जायें, जो हमारी सभ्यता एवं संस्कृति की सुरक्षा कर सकें। पाठ्यक्रम में सावधानीपूर्वक सुरक्षा के विषयों का चुनाव किया जाना चाहिए।

रचनात्मक प्रशिक्षण का सिद्धांत : पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों को स्थान मिलना चाहिए, जो बालकों की रचनात्मक योग्यता का विकास करे। रचनात्मक क्षमता एवं योग्यता के विकास से बालक एवं समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

पाठ्यक्रम के प्रकार

पाठ्यक्रम निर्माण के अनेक सिद्धांत हैं। सिद्धांत अनेक हैं और इसी कारण पाठ्यक्रम के भी अनेक प्रकार हैं। पाठ्यक्रम के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं-

विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम : विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य बालकों को विषय का ज्ञान प्रदान करना है। इसमें बालक से अधिक विषयों को महत्व प्रदान किया जाता है। बालक विषय को समझें या नहीं, उनका ज्ञान अध्यापक बालकों को देता है। यह पाठ्यक्रम बालकों की रुचि, प्रवृत्ति एवं क्षमता का ध्यान रखे बिना बनाया जाता है।

गुण

- (i) इसका संगठन सरल व आसान होता है।
- (ii) इस पाठ्यक्रम में आसानी से परिवर्तन किया जा सकता है।
- (iii) इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य स्पष्ट है।
- (iv) इसकी विषय-वस्तु पहले से ज्ञात रहती है। इससे शिक्षक एवं छात्र दोनों को ही लाभ होता है।
- (v) इस पाठ्यक्रम के अन्तर्गत परीक्षा लेना आसान है।
- (vi) यह पाठ्यक्रम एक निश्चित सामाजिक एवं शैक्षिक विचारधारा पर आधारित है।
- (vii) इस पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न विषयों के बीच सहसम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम

इस प्रकार के पाठ्यक्रम में अनुभवों को प्रधानता प्रदान की जाती है। मानव जाति के समस्त अनुभवों को पाठ्यक्रम में रखा जाता है, ताकि बालक उन अनुभवों से लाभ उठा सके। नन महोदय ने लिखा है कि इस पाठ्यक्रम में मानव जाति के अनुभवों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। व्यक्तित्व के विकास एवं जीवन में सफलता के लिए भूतकाल के अनुभव बड़े उपयोगी सिद्ध होते हैं।

गुण

- (i) यह पाठ्यक्रम मनोवैज्ञानिक है। यह बालकों की रुचि प्रवृत्ति, क्षमता अर्थात् व्यक्तिगत विभिन्नता पर आधारित है।
- (ii) यह पाठ्यक्रम नमनीय एवं लचीला है।
- (iii) यह बालकों के सर्वांगीण विकास में सहायक है।

- (iv) इसमें भौतिक एवं सामाजिक वातावरण का प्रयोग अधिक होता है।
- (v) यह पाठ्यक्रम प्रजातांत्रिक भागों से भरा-पूरा है।
- (vi) यह पाठ्यक्रम विद्यालय एवं समाज के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने में सफल एवं समर्थ है।
- (vii) यह बालकों का मानसिक विकास करता है।
- (viii) बालकों की रचनात्मक शक्ति को बढ़ाता है।
- (ix) इसमें बालकों को स्वानुभव एवं स्वानुशासन की भावना को विकसित होने का अवसर मिलता है।

क्रिया केन्द्रित पाठ्यक्रम: इस पाठ्यक्रम में पुस्तक प्रधान नहीं होती, विषय प्रधान नहीं होता। इसमें बालक की क्रियाएं एवं अनुभव को आधार माना जाता है। बालकों की प्रकृति क्रियाशील होती है। इसलिए उन्हें क्रिया के द्वारा पढ़ाना चाहिए।

गुण

- (i) यह पाठ्यक्रम बालकों की प्रवृत्तियों (Instincts) में सुधार करता है।
- (ii) यह बालकों की जिज्ञासावृत्ति को बढ़ाता है, जो उनके ज्ञान को बढ़ाने में सहायक है।
- (iii) यह बालकों का शारीरिक, बौद्धिक, (मानसिक) एवं भावात्मक विकास में सहायक है।
- (iv) यह मनोवैज्ञानिक पाठ्यक्रम है।
- (v) इस पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक भावना है।
- (vi) इसमें शिक्षक एवं छात्र दोनों ही सक्रिय रहते हैं।

बाल-केन्द्रित पाठ्यक्रम : इस पाठ्यक्रम में विषय को प्रधानता न देकर बालक को प्रधानता दी जाती है। यह पाठ्यक्रम बालक की वैयक्तिक विभिन्नता पर आधारित है। इसमें बालक की रुचि, प्रवृत्ति, क्षमता, अवस्था, परिस्थिति आदि का ध्यान रखा जाता है। यह बड़ा ही मनोवैज्ञानिक एवं आकर्षक पाठ्यक्रम है। यह सभी प्रकार के बालकों के लिए उपयोगी है।

यह पाठ्यक्रम शिक्षा की आधुनिक प्रवृत्तियों पर आधारित है। सभी आधुनिक शिक्षण पद्धतियाँ इसे स्वीकार करती हैं। इसमें शिक्षा का केन्द्र बालक रहता है। इसी कारण इसे बाल-केन्द्रित पाठ्यक्रम कहते हैं। माँन्टेसरी, किण्डर गार्टन, डाल्टन, आदि सभी शिक्षण पद्धतियाँ इस पाठ्यक्रम को स्वीकार करती हैं।

केन्द्रीय (कोर) पाठ्यक्रम : कोर पाठ्यक्रम अमेरिका की देन है। इसमें कुछ विषय अनिवार्य होते हैं और शेष ऐच्छिक होते हैं। ऐच्छिक विषय रुचियों पर आधारित होते हैं। अनिवार्य विषय का अध्ययन करना आवश्यक है। कोर पाठ्यक्रम में शारीरिक विकास के अलावा अन्य सभी प्रकार के विकास का ध्यान रखा जाता है। यह पाठ्यक्रम प्रजातांत्रिक है और सामाजिक भावना का प्रचार करता है।

विशेषताएँ

- (i) इस पाठ्यक्रम में कई विषय एक साथ पढ़ाये जाते हैं।
- (ii) इसमें किसी विषय के लिए निश्चित समय नहीं होता।
- (iii) यह पाठ्यक्रम बाल-केन्द्रित है।
- (iv) इसमें मनोवैज्ञानिक एवं अनुभव को भी सम्मिलित किया जाता है।
- (v) इसमें क्रिया एवं अनुभव को भी सम्मिलित किया जाता है।

इस पाठ्यक्रम के अन्तर्गत स्वास्थ्य, शिक्षा, विज्ञान, सामाजिक विषय, भाषा एवं गणित अनिवार्य विषय हैं।

अन्य प्रकार के पाठ्यक्रम

शिक्षक केन्द्रित पाठ्यक्रम : इस पाठ्यक्रम में शिक्षक प्रधान होता है। वही पढ़ाये जाने वाले विषयों का चुनाव करता है। कक्षा में वह प्रधान होता है। वह बालक की रुचि, प्रवृत्ति, क्षमता आदि का ध्यान रखे बिना पढ़ाता है।

शिल्प केन्द्रित पाठ्यक्रम : इस पाठ्यक्रम में विषय एवं बालक की प्रधानता न होकर शिल्प की प्रधानता होती है। विषय के ऊपर शिल्प को स्थान देकर बालक की व्यावसायिक क्षमता पर इसमें अधिक बल दिया जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार बुनियादी शिक्षा का पाठ्यक्रम भी ऐसा ही है।

सहसम्बन्धित पाठ्यक्रम : सहसम्बन्धित पाठ्यक्रम उस पाठ्यक्रम को कहते हैं, जिसमें विभिन्न विषयों को अलग-अलग न पढ़ाकर एक में सहसम्बन्धित करके पढ़ाया जाता है। चूंकि ज्ञान एक इकाई के रूप में है, इसलिए विषयों को भी सहसम्बन्धित करके पढ़ाना चाहिए। महात्मा गांधी, डिवी आदि ने इस प्रकार के पाठ्यक्रम पर बल दिया है। बुनियादी शिक्षा का पाठ्यक्रम भी ऐसा ही है।

जीवन केन्द्रित पाठ्यक्रम : इस पाठ्यक्रम में शिक्षा बालकों के जीवन को केन्द्र मानकर दी जाती है। यह शिक्षा जीवन की है, जीवन के लिए है, और जीवन के लिए दी जाती है। इसमें बालकों की रुचि, प्रवृत्ति एवं क्षमता का ध्यान रखा

जाता है, अर्थात् यह पाठ्यक्रम बालकों की वैयक्तिक विभिन्नता पर आधारित है। आधुनिक शिक्षा जीवन केन्द्रित पाठ्यक्रम की माँग करती है।

इसके अतिरिक्त एकीकृत पाठ्यक्रम बुनियादी शिक्षा का पाठ्यक्रम अन्तरविहीन पाठ्यक्रम आदि अनेक प्रकार के पाठ्यक्रम हो सकते हैं।

बच्चों के स्कूल छोड़ने के कारण:

डाॅ. चालमैन एवं डाॅ. वल्कर के अनुसार बच्चों के स्कूल छोड़ने के प्रमुख कारण

1. परिवार की सामाजिक, आर्थिक स्थिति।
2. परिवार एवं विद्यालय के वातावरण का बदलाव।
3. कुसमायोजित माता-पिता, सहपाठी का प्रभाव।
4. माता-पिता की स्वीकृति या अस्वीकृति का प्रभाव।
5. सीखने की परिस्थिति का प्रभाव।
6. परीक्षा की असफलता।
7. अत्यधिक डांट-फटकार का प्रभाव।
8. विद्यालय के दूषित वातावरण का कुप्रभाव।

परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति: परिवार की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का प्रभाव-कुप्रभाव बच्चे की मानसिकता पर बहुत अधिक पड़ता है। समय पर विद्यालय के शुल्कों को जमा न करने के कारण समय-समय पर बच्चों को प्रधानाचार्य से डांट-फटकार सुननी पड़ती है। वह अपने घर पर आकर पिता को इस संबंध में बताता है किन्तु लाचारी के कारण पिता शुल्क नहीं दे पाते हैं, साथ ही बच्चे को पिता से भी डांट सुननी पड़ती है। दोहरा डांट-फटकार बच्चे को स्कूल छोड़ने पर मजबूर कर देती है। कुछ माता-पिता शिक्षा की आवश्यकता नहीं समझते हैं और अपने बच्चे को काम करने के लिए कहते हैं जिससे आय बढ़ सके।

सामाजिक स्थिति के कारण भी बच्चा अपने वर्ग के अन्य बच्चों के साथ समायोजित नहीं हो पाता है। अच्छा वस्त्र, अच्छा लंच सामग्री, पठन-पाठन की सामग्रियों का निरंतर अभाव आदि कारणों से भी बच्चे बीच में ही स्कूल छोड़ देते हैं। बच्चे दूसरे बच्चों की सामग्री से ललचते हैं और उनमें हीन भावना पनपती है और वे प्रतिक्रिया में स्कूल छोड़ देते हैं।

परिवार एवं विद्यालय के वातावरण का बदलाव: घर पर बच्चे को माता-पिता द्वारा अधिक स्नेह मिलता है जबकि विद्यालय जाने पर उसे निश्चित समय के लिए कैदी के समान जीवन बिताना पड़ता है। साथ ही खेल-कूद का अवसर भी उसे कम मिलता है। वातावरण के इस बदलाव के कारण भी कुछ बच्चे स्कूल जाना बीच में ही छोड़ देते हैं।

कुसमायोजित माता-पिता एवं सहपाठी का प्रभाव: कुछ माता-पिता अत्यधिक व्यस्तता के कारण अपने बच्चे के पढ़ाई-लिखाई पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान नहीं दे पाते हैं और बच्चे को विद्यालय तथा ट्यूटर के हवाले छोड़ देते हैं। ऐसे बच्चे स्नेह के अभाव में जिद्दी होकर या हतोत्साहित होकर बीच में ही विद्यालय जाना छोड़ देते हैं। विद्यालय में कुछ सहपाठी ऐसे भी होते हैं जो बच्चे को बेवजह निरंतर तंग करते रहते हैं। ऐसे बच्चे की शिकायत करने पर जब शिक्षक द्वारा वह डांट सुनता है तो और उग्र होकर शिकायत करने वाले को पुनः परेशान करना शुरू कर देता है, अतः वह बच्चा तंग आकर बीच में ही विद्यालय जाना छोड़ देता है।

माता-पिता की स्वीकृति या अस्वीकृति का प्रभाव: डा. वल्कर के अनुसार जब माता-पिता बच्चे के मनोनुकूल कार्य करते हुए उसे विद्यालय जाने को प्रेरित नहीं करते या अत्यधिक दबाव डालते हैं, तो दोनों ही स्थितियों में बच्चे को पढ़ाई से अरुचि हो जाती है और वह बीच में ही विद्यालय जाना छोड़ देता है।

सीखने की परिस्थिति का प्रभाव: विद्यालय में जब बच्चा जाना प्रारंभ करता है और उसे वहां अपनी रुचियों के अनुकूल परिस्थितियां नहीं मिलती हैं और उसे वहां की प्रचलित परिस्थितियां अनुकूल नहीं लगती हैं, तो बच्चे स्कूल की ओर से उदास होने लगता है। यह उदासी धीरे-धीरे उसमें दबूपन तथा उद्दण्डता की भावना भरने लगती है। एक समय ऐसा आता है कि उसकी रुचि विद्यालय के प्रति एकदम समाप्त हो जाती है और वह बीच में ही विद्यालय जाना छोड़ देता है।

परीक्षा की असफलता: कुछ बच्चे मंद बुद्धि के होते हैं और वर्ग में पढ़ाये जाने वाले विषय-वस्तुओं को ठीक ढंग से ग्रहण नहीं कर पाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वे परीक्षाओं में असफल होते चले जाते हैं। बार-बार की असफलता उनके मन में हीन भावनाओं को जन्म देने लगती है, फलस्वरूप उन्हें बीच में ही विद्यालय छोड़ना पड़ जाता है।

अत्यधिक डांट-फटकार का प्रभाव: कुछ बच्चे उपद्रवी एवं मंदबुद्धि के भी होते हैं। ऐसे बच्चे अपने कार्य के प्रति भी लापरवाह बने रहते हैं। समय-समय पर उन्हें गृहकार्य बनाकर न लाने, याद न करने आदि के कारणों से विद्यालय तथा घर दोनों ही स्थानों पर अत्यधिक डांट-फटकारों को सुनना पड़ता है। इस फटकार से बचने के लिए बच्चा स्कूल जाना ही छोड़ देता है।

विद्यालय के दूषित वातावरण का कुप्रभाव: विद्यालय में मनोरंजन की सामग्रियों का न होना, खेल का मैदान न होना आदि अनेक ऐसे कारण होते हैं जिससे बच्चे का विद्यालय में दम घुटने लगता है। गंदा वातावरण एवं दूषित वातावरण के कारण भी बच्चे को विद्यालय से रुचि कम होने लगती है। अपने अनुकूल वातावरण को न पाकर बच्चा बीच में ही विद्यालय जाना छोड़ देता है।

बच्चों के स्कूल छोड़ने के कुछ अन्य कारण

सरकारी स्कूलों के भवनों की जर्जर हालत,

भवनविहीन प्राथमिक विद्यालय

विद्यालय में शिक्षकों की अनुपस्थिति

सामाजिक सुरक्षा तथा आवागमन के साधनों की कमी के कारण सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में नियमित रूप से स्कूल नहीं जाना

विद्यालय में शिक्षण साधनों का अभाव

स्कूल में मनोरंजन तथा खेल के सामानों की कमी

स्कूल में फलवारी तथा खेल के सामानों का नहीं रहना

शिक्षकों विशेषतः महिला शिक्षिकाओं के लिए विद्यालय में आवासीय सुविधाओं की कमी

शिक्षक/शिक्षिकाओं का शिक्षण के प्रति उदासीनता

शिक्षण-कार्य को श्रम-श्रमिकों के समान व्यवसाय समझना

पाठ्यक्रम का बोझिल होना

शिक्षकों का अप्रशिक्षित होना

निरीक्षक पदाधिकारियों की निष्क्रियता

सरकारी प्राथमिक स्कूलों के प्रति जनता की उपेक्षा आदि।

छात्रों के पोशाक (Uniform)

पोशाक की आवश्यकता: जिस प्रकार सेना, पुलिस, रेलवे, एन.सी.सी., एन.एस.एस इत्यादि में तथा डॉक्टरों और वकीलों इत्यादि के लिए 'पोशाक', जिसे गणवेश (Dress या Uniform) के नाम से भी जाना जाता है, निर्धारित हैं तथा अपने लिए निर्धारित पोशाक पहनना आवश्यक है, उसी प्रकार स्कूल जाने वाले छात्र-छात्रों के लिए भी 'पोशाक' की आवश्यकता होती है। हालांकि प्रत्येक विद्यालय के छात्र-छात्रों; विद्यार्थियों/विद्यार्थियों की पोशाक अलग-अलग होती है तथा कई सरकारी स्कूलों खासकर गांव-देहात में स्थित स्कूलों में पोशाकों का अधिक प्रचलन नहीं है, किन्तु पिछले भी पोशाक की महत्ता, उपयोगिता और आवश्यकता स्वयंसिद्ध है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जे.डी. अरस्तेह के अनुसार 'पोशाक धारण करने के बाद सृजनात्मकता का विकास होता है और उनमें आत्मविश्वास, बौद्धिक स्थिरता, जिज्ञासा, साहसिकता, विनोदप्रियता, वैचारिक स्पष्टता, आत्मानुशासन, उच्च अभिलाषाएं, लचीलापन, सौन्दर्यात्मक आदर्श आदि में वृद्धि होती है।'

पोशाक की आवश्यकता: जिस प्रकार विद्यालय में बच्चों के लिए समुचित शिक्षा प्रदान करने में शिक्षण के विभिन्न उपादानों की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार पोशाक की भूमिका महत्वपूर्ण है। यह तो निश्चित है कि विद्यालय में विभिन्न परिवेश से बच्चे आते हैं, लेकिन यहां तो एक परिवेश की आवश्यकता पड़ती है। पोशाक तो एकता का प्रतीक है। सभी बच्चों के लिए एक प्रकार की पोशाकें होने से बच्चों में अमीरी-गरीबी की भावना उत्पन्न नहीं होती है। अगर कोई बच्चा गरीब परिवार से यहां आते हैं तो एक पोशाक रहने के कारण उनमें हीन भावना घर नहीं करती है। अतः बच्चों में मानसिक भावना को समाप्त करने के लिए एक तरह की पोशाकें विद्यालय में आवश्यक है।

समानता का भाव: पोशाक निर्धारण का प्रथम मकसद है समानता का भाव लाना। विद्यालय की कक्षाओं में उच्चवर्ग, मध्यम वर्ग तथा निम्नवर्ग के छात्र सम्मिलित रूप से पढ़ा करते हैं। अगर विद्यालयों में पोशाक का निर्धारण न किया जाए तो सभी छात्र अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार रंग-बिरंगे परिधानों को पहनकर विद्यालय पहुंचेंगे। इस स्थिति में जिन छात्रों के पास अच्छे कपड़े नहीं होंगे, उनके मन में हीन भावना पनपेगी और वे इसमें पंफसकर अध्ययन से विमुख होते चले जायेंगे।

अलग-अलग स्कूलों का बोध कराने वाला: एक रंग की पोशाक जहां समानता की भावना को जगाता है, वहीं विशेष समूह का भी वह बोध कराता है। विशेष पोशाक किसी विद्यालय विशेष का सूचक होता है। दूर से ही वह छात्र पहचाना जा सकता है कि वह किस विद्यालय में अध्ययन करता है। पोशाक धारण करने के बाद छात्र जल्दी किसी अनैतिक कार्य को नहीं कर पाता है, क्योंकि उसकी पोशाक उसकी विशेष पहचान को बनाये रखती है। जिस प्रकार एक भारतीय अपने तिरंगा (राष्ट्रीय ध्वज) को हाथ में लेकर अपने ऊपर गर्वित होता है, उसी प्रकार एक छात्र स्कूल के पोशाक को पहनकर अपने ऊपर गर्व करता है।

विद्यालय के पोशाक: विद्यालय के पोशाक में पैन्ट, शर्ट, जूता, मोजा, बेल्ट, टाई तथा बैज प्रमुख रूप से हुआ करते हैं। एक ही रंग के पैन्ट, शर्ट, जूता, मोजा, बेल्ट, टाई तथा बैज के कारण विद्यालय में एकरूपता एवं समानता का बोध होता है, स्वच्छ बने रहने की भावना में वृद्धि होती है। साथ ही एक साथ एक बेन्च पर बैठने में भी संकोच नहीं होता है। पोशाक धारण करने से बच्चों में सृजनात्मकता का विकास होता है।

बेल्ट बांधने, जूता-मोजा आदि नियमित रूप से धारण करने के पीछे भी एक विशेष मकसद होता है। दिल्ली के एक प्रसिद्ध एक्यूप्रेशर (दबाव चिकित्सा) विशेषज्ञ डॉ. राधा गुप्त के अनुसार कमर पर नियमित रूप से बेल्ट बांधने से एक विशेष नस पर दबाव पड़ता रहता है। जिससे कमर दर्द, रीढ़ की हड्डी का दर्द, आदि अनेक बीमारियों से बच्चा बचा रहता है।

जूता एवं मोजा पहनने से पैर एवं उसके जोड़ की कुछ नसों पर दबाव पड़ता रहता है। ये दबाव ऐसे होते हैं जिनके कारण मिरगी, हाईब्लडप्रेसर आदि का दौरा नहीं पड़ता है। साथ ही मस्तिष्क की ज्ञान तंतुओं को भी चेतना प्राप्त होती रहती है।

पोशाक का स्वरूप: 'नेशनल काउंसिल ऑफ एजुकेशन' नई दिल्ली के निदेशक डॉ. प्रवीण बागी के अनुसार बारह वर्ष से ऊपर के छात्रों के लिए फूल पैंट तथा बारह वर्ष से अधिक उम्र की छात्राओं के लिए सलवार-कुरती तथा चुनरी का होना अत्यावश्यक है। इनका निर्धारण कक्षा के अनुसार न होकर उम्र के अनुसार ही होना चाहिए। प्रायः यह देखा गया है कि बड़ी उम्र की छात्राएं भी नीची कक्षा में रहने पर टॉप-स्कर्ट ही पहनकर विद्यालय जाया करती हैं। यह परिधान भारतीय परम्परा एवं नैतिकता के दृष्टिकोण से ठीक नहीं माना जाता है।

प्रायः प्रत्येक निजी (प्राइवेट) स्कूलों में पोशाक की अनिवार्यता होती है, किन्तु आज भी अनेक ऐसे सरकारी स्कूल हैं जहां पोशाक की अनिवार्यता नहीं समझी जा रही है। पोशाक समानता के अधिकार को प्रदान करता है, साथ ही एक सौम्य वातावरण का निर्माण भी करता है। अतः वर्तमान समय में पोशाक की अनिवार्यता को नकारा नहीं जा सकता है।

पोशाक की आवश्यकता, उद्देश्य महत्व व कारण

पोशाक से विद्यार्थियों में समानता की भावना आती है।

इससे वर्ग विभेद तथा वर्ण व जाति विभेद मिटता है।

निर्धारित पोशाक से आत्म अनुशासन सुदृढ़ होता है।

यह विद्यालय को विशेष पहचान दिलाती है।

पोशाक बच्चों में हीन भावना को दूर करती है।

पोशाक धारण करने में बच्चों में सृजनात्मकता का विकास होता है।

पोशाक बच्चों में संस्कार को परिष्कृत करती है।

पोशाक बच्चों को सफाई पसंद बनाती है तथा उसे स्वस्थ रहने में मदद करती है।

पोशाक बच्चों में आपसी पहचान, मेल-मिलाप और एकता को बढ़ावा देती है।

पोशाक से बच्चों के स्कूल की पहचान की जा सकती है।

निम्नवर्ग के छात्र कक्षा में बैठने से संकोच नहीं करते हैं।

बच्चों को खेलकूद की आवश्यकता:

परिभाषा तथा विशेषतायें खेल मानव की जन्म-जात प्रवृत्ति है। बालक जन्म से ही हाथ-पैर फेंकना आरंभ कर देता है। प्रौढ़ावस्था तक वह किसी-न-किसी प्रकार के खेल खेलता रहता है। खेल वह क्रिया है जिस पर बालक का समस्त जीवन आधारित है। बालक की शक्ति का उपयोग खेल में ही होता है। इससे बालक की कल्पना-शक्ति विकसित होती है। शरीर का विकास होता है। खेल के माध्यम से दूसरों के समझने की, खेल-खेल में सहयोग सदभावना की शक्ति उत्पन्न होती है। प्रतियोगिता में भाग लेकर बालक में अनेक प्रकार से आत्म-विश्वास प्राप्त होता है। आघात सहने की शक्ति भी उसमें आ जाती है। लक्ष्य प्राप्ति के लिये संघर्ष करना जीवन का सबसे बड़ा खेल है। कहने का तात्पर्य यह है कि खेलों का महत्व मानव-विकास में अत्यधिक है और इसके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। इसलिये खेल द्वारा शिक्षा देने का भी काफी प्रचार हुआ।

मानव जीवन अनेक व्यस्तताओं, जटिलताओं एवं व्याधियों से भरा है। सभी प्रकार के सुखों के उपलब्ध होते हुए भी मानव सुखी नहीं है। रात-दिन काम करते रहने पर वह थक जाता है, आराम चाहता है। आराम के लिये आवश्यक है खेल। खेल शब्द का इतना सामान्य प्रचलन हो गया है कि यह अपनी वास्तविक महत्ता खो बैठा है। इसका संबंध परिणाम की चिन्ता किये बिना आनंददायक क्रिया में संलग्न रहने से है। इसमें व्यक्ति ऐच्छिक रूप से बिना बाह्य प्रभाव के भाग लेता है। इसका संबंध कार्य (Work) से नहीं है। कार्य का किसी उद्देश्य की पूर्ति करना होता है। बच्चों के लिये कक्षागत कार्य, कार्य है जबकि खेल से परे है। खेल, महज एवं सरल क्रिया है और कार्य जटिल गंभीर एवं गहन क्रिया है।

बच्चों को खेलकूद की आवश्यकता

बालक खेल के माध्यम से अनेक कार्य सीखता है। यों कहे कि वह खेल के माध्यम से अपना सामाजिक, संवेगात्मक, नैतिक, भाषा, सर्वांगीण विकास करता है। वह अनुसरण के माध्यम से बड़ों की अनेक क्रियाओं को सीखता है और यों एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में सामाजिक वंशक्रम खेल के माध्यम से हस्तान्तरित होता रहता है। इसलिए ही पाठ्यक्रम में खेल को पाठ्यक्रम-सहगामी क्रिया के रूप में महत्व को स्वीकार किया गया है।